इज्तिहाद, तलाक़ और मुसलमान औरतें

भीतर से सुधार की सम्भावनाएँ

अमरीन

इसलामी क़ानून मुख्यत: क़ुरान[1], सुन्ना[2] तथा हदीस[3] पर आधारित है। इज्तिहाद की संकल्पना इसी रूपरेखा का अंग है। इज्तिहाद का शाब्दिक मतलब है एक ऐसा प्रयास जो मानवीय विवेक पर आधारित हो। इज्तिहाद एक तरीक़ा है जिसके माध्यम से बदले हुए हालात के मुताबिक़ इसलामी क़ानूनों की व्याख्या की जा सकती है। इज्तिहाद की संकल्पना समय और संदर्भ के अनुरूप क़ानूनों में उचित बदलाव लाती है, लेकिन इसके साथ ज़रूरी शर्त होती है कि वह तब्दीली क़ुरान और शरीयत के अनुरूप ही होनी चाहिए। क़ानूनों का लचीलापन ही उनके लाभ और उपयोगिता की सबसे बड़ी जाँच है।[4] कई बार इज्तिहाद को न्यायशास्त्र के सिद्धांतों की खोज में कुछ हद तक सत्ता

---

[1] क़ुरान इसलाम का सर्वोच्च ग्रंथ तथा इसलामी क़ानून का प्राथमिक स्रोत है.

[2] सुन्ना पैग़म्बर मुहम्मद के शब्दों और कार्यों पर आधारित है जो कि हदीस में संगृहीत है. यह इसलामी क़ानून का एक आधारभूत स्रोत है.

[3] हदीस पैग़म्बर मुहम्मद की शिक्षा, परम्परा और दृष्टांतों का संग्रह है जिसे क़ुरान के पश्चात् इसलामी क़ानून के स्रोत के रूप में स्वीकृति दी जाती है.

[4] देखें सैयद अमीर अली (2004), *द स्पिरिट ऑफ़ इसलाम,* ताज कम्पनी, दिल्ली : 230.

प्राप्त करने के रूप में परिभाषित किया गया है।[5] इसके अतिरिक्त इज्तिहाद किसी क़ानूनी प्रश्न अथवा मुद्दे पर एक आत्मनिर्भर तथा स्वतंत्र न्यायिक मत रखने का प्रयास भी है।[6] ध्यान रहे कि इसलाम में क़ुरान की पवित्र किताब क़ानूनों का स्रोत है, न कि स्वयं में क़ानून। इज्तिहाद अपने क़ानूनी अर्थ में न्यायविद् का प्रयास है जिसके माध्यम से वह स्रोतों से हासिल की गयी दलील को आधार बना कर क़ानूनों तथा नियमों की रचना करता है।[7]

इज्तिहाद के इस्तेमाल से जुड़े विवाद : हालाँकि यह वर्णन इज्तिहाद की संकल्पना स्पष्ट करता है, पर यह एक विवादित संकल्पना है। इसलामी इतिहास में पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद के समय और उनकी मृत्यु के पश्चात् इज्तिहाद का काफ़ी इस्तेमाल देखने को मिलता है, परंतु इसलाम की तीसरी शताब्दी के आस-पास इसलामी न्यायविदों ने इज्तिहाद का प्रयोग करना कम अथवा लगभग बंद कर दिया जिसे 'क्लोज़िंग द गेट ऑफ़ इज्तिहाद' कहा गया। विवाद इस प्रश्न पर है कि क्या इज्तिहाद को वास्तव में समाप्त कर दिया गया था? इस प्रश्न पर दो मत दिखाई देते हैं। पहला पक्ष इज्तिहाद की समाप्ति का समर्थन करता है, वहीं दूसरा पहलू इज्तिहाद की समाप्ति को नकारते हुए उसकी निरंतरता पर बल देता है।

इज्तिहाद को ख़त्म मानने वालों का कहना है कि इसलामी क़ानून के इतिहास में जब धर्मशास्त्र तथा क़ानून के संबंध में सभी निर्णय ले लिए गये तो इन निर्णयों को अपरिवर्तनीय मान कर इज्तिहाद के इस्तेमाल को समाप्त कर दिया गया।[8] इसलाम की तीसरी शताब्दी तक यह मान्यता बननी प्रारम्भ हो गयी थी कि इसलाम के चार न्यायवेत्ताओं ने जो कुछ भी कहा उसके विरोध में मुसलमानों के मध्य किसी तरह की सहमति नहीं हो सकती।[9] इज्तिहाद की समाप्ति का एक अन्य कारण यह भी माना जाता है कि इस समय तक इसलामी क़ानूनों के संग्रह को इतना विकसित किया जा चुका था कि उसमें हमेशा-हमेशा के लिए सभी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता थी।[10] इज्तिहाद की समाप्ति को नकारने वाला पक्ष तर्क देता है कि इज्तिहाद कभी भी समाप्त नहीं हुआ क्योंकि यह इसलामी क़ानूनों के सिद्धांत का एक अभिन्न अंग है और इज्तिहाद का प्रयोग करना सभी सक्षम न्यायविदों का धार्मिक कर्तव्य है।[11] इज्तिहाद न केवल सम्भव है बल्कि आवश्यक अवस्था है । चारों सुन्नी सम्प्रदायों ने क़ानून के विकास तथा विस्तार के लिए गुंजाइश छोड़ी है[12] क्योंकि इसलाम के चारों इमाम कभी अंतिम मतैक्य पर नहीं पहुँच सके। इस लिहाज़ से इज्तिहाद एक सक्रिय संकल्पना है। तीस के दशक में तुर्की के विचारों तथा गतिविधियों को भी इज्तिहाद के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है।[13] इस तर्क से स्पष्ट होता है कि भले ही इसलाम में तीसरी सदी के आस-पास इज्तिहाद का इस्तेमाल कम हो गया हो परंतु यह कभी भी पूरी तरह से समाप्त नहीं हुआ।[14]

---

[5] यह विचार बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी द्वारा अभिव्यक्त किया गया है. इसके लिए देखें, शाइस्ता पी. अली करमाली और फ़ियोना डन (1994), 'द इज्तिहाद कांट्रोवर्सी', *अरब लॉ क्वार्टरली,* खण्ड 9, अंक 3 : 238-257.

[6] एडवर्ड सेल (1986), *द फ़ेथ ऑफ़ इसलाम,* किसिंजर पब्लिकेशन, लंदन : 32.

[7] बरनार्ड वीज़ (1977), थियरी ऑफ़ इज्तिहाद, *द अमेरिकन जर्नल ऑफ़ कम्पेरेटिव लॉ,* खण्ड 26, अंक 3 : 199-212.

[8] एच.ए.आर.गिब (1932), *विदर इसलाम,* वी गोलानेज, लंदन : 67.

[9] एल.ई. ब्राउन (1939), 'द डिवलपमेंट ऑफ़ इसलाम', *मुसलिम वर्ल्ड* : 376.

[10] अहमद हसन (1973), 'मॉडर्न ट्रेंड्स इन इजमा', *इस्लामिक स्टडीज़,* खण्ड 12 : 137; अल्बर्ट हौरानी (1962), *अरेबिक थॉट इन लिबरल एज,* लंदन; एस. इरफ़ान हबीब (2012), *जिहाद और इज्तिहाद,* हार्पर कॉलिन्स : 30-31.

[11] डब्ल्यू.बी. हैलेक़ (1984), 'वाज़ द गेट ऑफ़ इज्तिहाद क्लोज़्ड ?', *मिडिल ईस्ट स्टडीज़,* खण्ड 16, अंक 1: 3-41.

[12] अब्दुल रहीम (1911), *मोहम्मडन ज्युरिसप्रुडेंस,* मद्रास : 173.

[13] मोहम्मद इक़बाल (2008), *द रिकंस्ट्रक्शन ऑफ़ रिलीजस थॉट इन इसलाम,* डोडो प्रेस.

[14] जूडिथ ई. टकर (2008), *वुमॅन फ़ैमिली ऐंड जेंडर इन इसलामी लॉ,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क.

शाहबानो के मुक़दमे में समान नागरिक संहिता की माँग के साम्प्रदायिकीकरण की रोशनी में सेकुलर नारीवादियों ने कुछ अन्य विकल्पों की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है, क्योंकि अल्पसंख्यक समान नागरिक संहिता को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता तथा उत्तरजीविता के लिए ख़तरे के तौर पर देखते हैं। समान नागरिक संहिता के इर्द-गिर्द होने वाली बहस समुदाय, राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता जैसे आग्रहों के इर्द-गिर्द केंद्रित हो कर रह गयी है तथा लैंगिक न्याय का मुद्दा इसमें कहीं पीछे छूट गया है, इसलिए आवश्यक है कि एक विकल्प के रूप में भीतर से सुधार पर विचार किया जाए।

इज्तिहाद की निरंतरता का एक मुख्य आधार यह भी है कि स्वयं क़ुरान में इज्तिहाद का ज़िक्र किया गया है। क़ुरान की सूरह साद की आयत छब्बीस (38:26)[15] तथा सूरह अल अंबिया की आयत अड़तीस (21:38)[16] मानवीय प्रयास की चर्चा करती हैं ताकि लोगों को न्याय उपलब्ध कराया जा सके। यहाँ निर्णय लेने के लिए व्यक्ति की समझ को केंद्रस्थ किया गया है। इज्तिहाद की निरंतरता स्पष्ट करने वाला मुख्य आधार है इसलामी राष्ट्रों द्वारा समकालीन समय में इज्तिहाद का इस्तेमाल। उदाहरण के लिए मिस्र ने 1943 में अपने उत्तराधिकार क़ानून में संशोधन किया, 1953 में वक़्फ़ क़ानून और पारिवारिक क़ानून में फेरबदल किया गया । इराक़ ने 1959 में तलाक़, निकाह आदि क़ानूनों में फेरबदल करने वाली विवाह संहिता जारी की; सीरिया में ये परिवर्तन 1953 में किये गये। 1957 में ट्यूनीशिया ने विवाह अधिनियम जारी किया जिसमें कहा गया कि क़ुरान में सह-पत्नियों को हर तरह से समान दर्जा दिया गया है और चूँकि आधुनिक समय में ऐसा सम्भव नहीं है इसलिए बहु-विवाह को प्रतिबंधित किया जाता है। इसमें यह भी कहा गया है कि न्यायालय से बाहर किया गया तलाक़ निष्प्रभावी माना जाएगा। 1959 में अल्जीरिया ने भी एक अध्यादेश जारी करके सभी प्रकार के तलाक़ को न्यायालय के दायरे में ला दिया।[17] 1961 में पाकिस्तान ने पारिवारिक अधिनियम अध्यादेश लागू किया जिसके अंतर्गत बहु-विवाह तथा तीन तलाक की प्रथा पर पुनर्विचार का अधिकार

[15] जिन आयतों का वर्णन यहाँ किया गया है उनके लिए देखें मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान (2006) (अनुवाद), *क़ुरान,* गुडवर्ड बुक्स, नयी दिल्ली : 344.

[16] वही : 245 ; हामिद अलजार (2002), 'क़ुरान 21:78-9 : ए क़ुरानिक बेसिज़ फ़ॉर इज्तिहाद ?', *जर्नल ऑफ़ क़ुरानिक स्टडीज़,* खण्ड 4, अंक 2 : 1-22.

[17] इज्तिहाद के समकालीन इस्तेमाल के लिए देखें ऐन रेचल कोड (1999), 'ए क्रिटिकल एनालिसिस ऑफ़ द रोल ऑफ़ इज्तिहाद इन लीगल रिफ़ॉर्म्स इन मुसलिम वर्ल्ड', *अरब लॉ क्वार्टरली,* खण्ड 14, अंक 3 : 122-124; अरुण कुमार त्रिपाठी (2004), 'समान नागरिक संहिता का सवाल', राजकिशोर (सम्पा.), *भारतीय मुसलमान : मिथक और यथार्थ,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली : 99.

एक परिषद को दिया गया। मिस्र, सूडान, सीरिया, जॉर्डन, मोरक्को में तीन बार तलाक कह कर तलाक देने पर प्रतिबंध लगाया जा चुका है। ईरान में दूसरा विवाह करने से पहले न्यायालय से अनुमति लेने का प्रावधान किया गया है।[18]

ये तमाम उदाहरण वर्तमान समय में इज्तिहाद के इस्तेमाल के स्पष्ट प्रमाण हैं। जाहिर है कि इज्तिहाद में सुधार की एक महत्त्वपूर्ण सम्भावना निहित है। चूँकि हमारी मुख्य कोशिश यह है कि तलाक के संदर्भ में इज्तिहाद की सम्भावनाएँ ढूँढ़ने का प्रयास किया जाए, ज़रूरी है कि पहले क़ुरान के अनुसार तलाक़ की प्रक्रिया को समझा जाए। क़ुरान की कई आयतों में तलाक़ संबंधी निर्देश मौजूद हैं जिन्हें तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है :

प्रथम चरण : प्रारम्भिक स्तर पर पति-पत्नी के मध्य यदि तलाक़ की आशंका हो तो उनके बीच परिजनों के माध्यम से सुलह की बात की जानी चाहिए।[19]

द्वितीय चरण : इस चरण में यह स्पष्ट किया गया है कि समझौता विफल होने के पश्चात् तलाक़ कैसे दिया जाना चाहिए। क़ुरान स्पष्ट करता है कि तलाक़ इद्दत[20] की अवधि के समय पर दिया जाना चाहिए और इद्दत की अवधि का पूरा ध्यान रखना ज़रूरी है। विधि के बारे में बताते हुए कहा गया है कि दो बार तलाक़ दिया जाए, इसके पश्चात् या तो बीवी को रख लिया जाए या उससे अलग हो जाया जाए, परंतु यदि तीसरा तलाक़ दिया गया तो हलाला[21] के बिना पुन:संबंध स्थापित करना सम्भव नहीं है ।

तीसरा चरण : इस चरण में तलाक़ के बाद पुरुष की ज़िम्मेदारियों का वर्णन किया गया है। यहीं इद्दत की अवधि में गुज़ारे भत्ते का ज़िक्र भी है।[22]

यह वर्णन तलाक़ की प्रक्रिया स्पष्ट करता है। इससे ज़ाहिर है कि तलाक़ के मामलों में महिलाओं की स्थिति प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है, क्योंकि पुरुष इद्दत की अवधि के दौरान ही महिला को गुज़ारा भत्ता देता है, उसके पश्चात् नहीं। यही कारण है कि महिलाएँ दूसरा विवाह न करने की स्थिति में अपने परिवार तथा संबंधियों पर पूर्णत: निर्भर हो जाती हैं। सम्भवत: इन्हीं कारणों से इसलामी राष्ट्रों द्वारा तलाक़ संबंधी कई सुधार किये गये हैं जिनकी चर्चा इस लेख में की जा चुकी है।

तलाक़ के संदर्भ में इज्तिहाद की सम्भावनाओं को स्पष्ट करने वाला एक मुक़दमा बांग्लादेश में 1995 में सामने आया। यह मोहम्मद हफ़ज़ूर रहमान बनाम शमसुन नहर बेगम[23] तलाक़ का मुक़दमा था। यहाँ निर्णय दिया गया कि इद्दत की अवधि के पश्चात् भी पुरुष महिला को गुज़ारा भत्ता देगा जब तक कि वह दूसरा विवाह न कर ले और यह गुज़ारा भत्ता एक हज़ार टका प्रति माह निश्चित किया गया। इस निर्णय में क़ुरान की सूरह बकर की आयत 241 (2:241)[24] का संदर्भ दिया गया। इस मुक़दमे के अतिरिक्त हसीना अहमद बनाम अबुल फ़ज़ल, 1980[25] के मुक़दमे में महिला को उसके पति की सम्मति न होने के बावजूद भी महिला को खुला (महिला द्वारा लिया जाने वाला तलाक़)

---

[18] वही.

[19] देखें *क़ुरान की आयत 4:35*, मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान, वही.

[20] इद्दत तलाक़ के पश्चात वह अवधि है जिसके दौरान, शरीयत के अनुसार, स्त्री को गुज़ारे भत्ते का अधिकार प्राप्त है. इद्दत की अवधि तलाक़ दिये जाने के समय से स्त्री के तीन मासिक धर्म तक सीमित है.

[21] तीन तलाक़ के पश्चात यदि स्त्री एवं पुरुष पुन: मिलना चाहें तो स्त्री को किसी अन्य पुरुष के साथ विवाह करना होगा और यदि वह पुरुष अपनी इच्छा से स्त्री को तलाक़ दे दे तब स्त्री और उसका पूर्व पति पुन: विवाह कर सकते हैं.

[22] देखें *क़ुरान की आयत 65:6*, मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान, वही.

[23] ऐन रेचल कोड, वही : 112-131.

[24] मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान, वही.

[25] ऐन रेचल कोड, वही.

दिलाया गया जो तलाक़ में महिलाओं की स्थिति सशक्त करता है । पाकिस्तान के एक मुक़दमे बेग़म बनाम दीन में इज्तिहाद की सम्भावनाओं का ज़िक्र किया गया है। फ़ैसला देते हुए न्यायाधीश मुहम्मद शफ़ी ने राय दी कि क़ुरान को पढ़ना और समझना इसकी व्याख्या से जुड़ा है और यह व्याख्या क़ानूनों को लागू करने से संबंधित है जिन्हें मौजूदा हालात और बदलती हुई दुनिया के अनुरूप होना चाहिए।

यह विवरण तलाक़ के मामलों में इज्तिहाद की सम्भावनाएँ स्पष्ट करता है। यह सुधार की एक महत्त्वपूर्ण दिशा है जो इसलामी विमर्श के अंतर्गत अहम हैसियत रखती है। यह सही है कि भारत में इज्तिहाद का कोई प्रत्यक्ष उदाहरण नहीं मिलता, पर भीतर से सुधार के अंतर्गत सुधार की सम्भावनाओं पर विचार करना आवश्यक है। परंतु इन सम्भावनाओं पर विचार करने से पूर्व भीतर से सुधार की ओर ले जाने वाली परिस्थितियों का विश्लेषण भी ज़रूरी है।

तलाक़ : समान नागरिक संहिता बनाम निजी क़ानून एवं विभिन्न नारीवादी दृष्टिकोण

भारतीय संविधान के भाग-4 में अनुच्छेद 44 समान नागरिक संहिता की बात करता है। चूँकि यह राज्य की नीति के निर्देशक तत्त्वों का हिस्सा है इसलिए वाद-योग्य नहीं है। इस प्रावधान की मौजूदगी के साथ ही विभिन्न समुदायों के अपने निजी क़ानून प्रचलित हैं। सेकुलर नारीवाद समान नागरिक संहिता का समर्थन करता है। सेकुलर नारीवादियों की मान्यता है कि विभिन्न समुदायों के निजी क़ानून जेंडर के प्रति न्याय में बाधक हैं तथा समान नागरिक संहिता लैंगिक न्याय लाने में सहायक सिद्ध हो सकती है। कुछ हिंदूवादी संगठनों द्वारा भी समान नागरिक संहिता की माँग उठाई गयी है, परंतु उनकी यह माँग लैंगिक न्याय पर आधारित न हो कर राष्ट्रीय भावना सुदृढ़ करने के लिए एक ज़रूरी शर्त के रूप में सामने आती है। शाहबानो के मुक़दमे[26] में समान नागरिक संहिता की माँग के साम्प्रदायिकीकरण की रोशनी में सेकुलर नारीवादियों ने कुछ अन्य विकल्पों की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है, क्योंकि अल्पसंख्यक समान नागरिक संहिता को अपनी सांस्कृतिक अस्मिता तथा उत्तरजीविता के लिए ख़तरे के तौर पर देखते हैं। इसके अतिरिक्त एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि समान नागरिक संहिता के इर्द-गिर्द होने वाली बहस समुदाय, राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता जैसे आग्रहों के इर्द-गिर्द केंद्रित हो कर रह गयी है तथा लैंगिक न्याय का मुद्दा इसमें कहीं पीछे छूट गया है,[27] इसलिए आवश्यक है कि एक विकल्प के रूप में भीतर से सुधार पर विचार किया जाए।

सेकुलर नारीवादी दृष्टिकोण : यह दृष्टिकोण मुख्यतः पुरुष तथा महिला के मध्य परस्पर समानता का समर्थक है और स्त्रियों के जीवन में धर्म के प्रभाव को सीमित करना चाहता है। सेकुलर नारीवाद की मान्यता है कि औपचारिक क़ानूनी समानता मिलने के पश्चात् ही आगे के लिए संघर्ष किया जा सकता है। यदि स्त्रियों के पास तलाक़, संरक्षत्व आदि अधिकार ही नहीं हैं तो वह अपनी सेक्शुअलिटी पर अपने अधिकार और नियंत्रण के लिए कैसे आगे बढ़ेंगी।[28] यह दृष्टिकोण महिलाओं के जीवन में जेंडर-अस्मिता को प्रमुखता दे कर धार्मिक अस्मिता को उससे विस्थापित करने के पक्ष में हैं।[29] सेकुलर नारीवाद समान नागरिक संहिता का समर्थन करता है। उसका मानना है कि यदि सभी व्यक्तियों के लिए समान क़ानून हो तो महिलाओं को उनके निजी क़ानूनों के प्रभाव से निकाला जा

---

[26] राजेश्वरी सुंदर राजन और ज़किया पाठक (1989), 'शाहबानो', *साइंस,* खण्ड 14, अंक 3 : 558-582; मधु किश्वर (2005), 'शाहबानो'; अभय कुमार दुबे (सम्पा.), *बीच बहस में सेकुलरवाद,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

[27] निवेदिता मेनन (2010), 'समान नागरिक संहिता : नारीवाद में मौजूदा बहस', साधना आर्य वगैरह (सम्पा.), *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय : 327-333.

[28] अर्चना पाराशर (1992), *वुमॅन ऐंड फ़ैमिली लॉ रिफ़ॉर्म इन इण्डिया,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

[29] राजेश्वरी सुंदर राजन और ज़किया पाठक, वही.

सकता है। इस विचार के साथ समस्या यह है कि यह समान नागरिक संहिता के प्रश्न पर अपने आपको हिंदू संगठनों की स्थिति से अलग नहीं कर पाता।[30] समान नागरिक संहिता के साम्प्रदायिकीकरण के चलते सेकुलर नारीवादी अपनी माँग से थोड़ा पीछे हटे हैं तथा अन्य विकल्पों की ओर ध्यान दे रहे हैं जिनमें भीतर से सुधार एक महत्त्वपूर्ण विकल्प है।[31]

उत्तर-आधुनिकतावादी तथा उत्तर-संरचनावादी दृष्टिकोण : यह दृष्टिकोण मुख्यतः धार्मिकता की अभिव्यक्ति के नये रूपों का समर्थक है । यह सामान्यीकरण से परे जा कर विशिष्ट संदर्भ की बात करता है।[32] इस दृष्टिकोण का मानना है कि धर्म के मुद्दे को विरोधी स्वर में न उठाया जाए बल्कि सांस्कृतिक परम्पराओं और प्रथाओं की विविध व्याख्या के तरीक़ों तथा बहुलता का विकास किया जाए। धर्म की समरूपता के मिथक को तोड़ने का प्रयास किया जाए।[33] इस प्रकार यह दृष्टिकोण प्रतिबंधित पहचान से परे जा कर जीवन जीने के अन्य तरीक़े विकसित करने का समर्थक है जहाँ इज्तिहाद के इस्तेमाल के समर्थन को आधार मिलता है। यह दृष्टिकोण सेकुलर नारीवादियों से अलग तात्त्विक समानता का समर्थन करता है जिसका प्रारम्भिक बिंदु वंचित तथा हाशिये पर पड़े समाज से तात्त्विक असमानता का उन्मूलन है। यहाँ क़ानून के अंतर्गत महिला तथा पुरुष के मध्य अंतर को स्वीकार करते हुए महिलाओं के लिए विशिष्ट व्यवहार की बात की जाती है।

इसलामी नारीवाद : अस्सी के दशक में धर्म आधारित निजी क़ानूनों और उनसे जुड़े विवादों के पश्चात् इसलामी नारीवाद के तहत महिला अधिकार आंदोलन का उदय हुआ।[34] उन्होंने निजी क़ानूनों में सुधार का दावा किया जो संविधान पर आधारित न हो कर मुख्य रूप से क़ुरान की सत्ता पर आधारित है। इसलामी नारीवाद का केंद्रीय तर्क यही है कि क़ुरान ने महिलाओं के लिए अनेक अधिकारों की गारंटी दी है परंतु इन अधिकारों को पितृसत्तात्मक व्याख्याओं के चलते नकार दिया गया है। इस नारीवाद का मानना है कि मानवीय मामले लगातार परिवर्तन की स्थिति में रहते हैं इसलिए समय की वास्तविकता को देखते हुए नयी व्याख्याओं की ज़रूरत रहती है और जेंडर एक मानवीय संकल्पना है।[35] मुसलिम नारीवाद का धर्म और धार्मिक शिक्षा में यक़ीन है। इसकी पैरोकार क़ुरान में निहित अपने पक्ष का समर्थन करने वाली आयतों को आधार बना कर इसलाम के समतामूलक मूल्यों को प्रोत्साहित व प्रचारित करती हैं।[36] इस प्रकार यह दृष्टिकोण इसलामी ढाँचे के अंतर्गत सुधार पर आधारित होते हुए समय व संदर्भ के अनुरूप जेंडर आधारित व्याख्याओं का समर्थक है। यह राजनीतिक और धार्मिक विमर्श को इस प्रकार जोड़ने के प्रयास करता है कि उसे इसलामी विमर्श में वैधता और मान्यता मिल सके।

भारत में समान नागरिक संहिता लागू करने में कुछ तकनीकी और व्यावहारिक दिक़्क़तें हैं। उदाहरण के लिए यहाँ की क़ानूनी विविधता अत्यंत जटिल है और क़ानूनी प्रथाओं में एकरूपता लाने

---

[30] सूज़ी थारु और तेजस्विनी निरंजना (1996), 'प्रॉब्लम्स फ़ॉर अ कंटेम्परेरी थियरी ऑफ़ जेंडर', शाहिद अमीन एवं दीपेश चक्रवर्ती (सम्पा.), *सबाल्टर्न स्टडीज़*, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली : 232-260.

[31] साधना आर्य, वही.

[32] सुज़ेन गेनोन और ब्रोन्विन डेविस (2007), 'पोस्ट-मॉडर्न, पोस्ट-स्ट्रक्चरल ऐंड क्रिटिकल थियरीज़', शेरलीन नेगी हीस बाइबर (सम्पा.), *हेंडबुक ऑफ़ फ़ेमिनिस्ट रिसर्च*, सेज पब्लिकेशन.

[33] रत्ना कपूर (2007), 'चैलेंजिंग द लिबरल सब्जेक्ट : लॉ ऐंड जेंडर जस्टिस इन साउथ एशिया', मैत्रेयी मुखोपाध्याय और नवशरण सिंह (सम्पा.), *जेंडर जस्टिस, सिटीज़नशिप ऐंड डेवलपमेंट*, ज़ुबान, नयी दिल्ली : 116-170.

[34] नादिया क्रिस्टीना श्नाइडर (2009), 'इसलामी फ़ेमिनिज़्म ऐंड मुसलिम वुमॅन राइट्स एक्टिविज़्म इन इण्डिया', *जर्नल ऑफ़ इंटरनैशनल वुमंस स्टडीज़*, खण्ड 11, अंक 1.

[35] वही.

[36] सिलविया वटुक (2008), 'इसलामी फ़ेमिनिज़्म इन इण्डिया : इण्डियन मुसलिम वुमंस एक्टिविस्ट्स ऐंड द रिफ़ॉर्म्स इन मुसलिम पर्सनल लॉ', *मॉडर्न एशियन स्टडीज़*, खण्ड 42, अंक 2/3 : 489-518.

का कोई भी प्रयास संघर्ष उत्पन्न कर सकता है। कुछ जनजातीय समुदायों जैसे नागा, मिज़ो आदि के निजी क़ानूनों को संवैधानिक अनुमोदन प्राप्त है। ऐसी स्थिति में समान नागरिक संहिता लागू होने पर इन प्रावधानों के लिए संवैधानिक संशोधनों की आवश्यकता होगी जो आसान नहीं है। इसके अतिरिक्त शाहबानो मुक़दमे का अनुभव भी ध्यान देने योग्य है। इस मुक़दमे में जिस तरह मुसलिम निजी क़ानूनों की चर्चा करते हुए समान नागरिक संहिता की आवश्यकता पर बल दिया गया, उससे फ़ायदा उठा कर कुछ हिंदूवादी संगठनों ने मुसलमान स्त्रियों की दुर्दशा की आड़ में मुसलमान विरोधी भावनाएँ भड़काने का प्रयास किया। मुसलमान समुदाय ने शाहबानो मुक़दमे पर तीव्र प्रतिक्रिया दी। ऑल इण्डिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड ने कहा कि यह मुक़दमा मुसलमानों के निजी क़ानूनों में हस्तक्षेप है। उपरोक्त सभी कारणों और शाहबानो मुक़दमे के विवाद के चलते समान नागरिक संहिता के लागू होने में समस्याएँ स्पष्ट हैं। यह परिस्थिति भी भीतर से सुधार को एक बेहतर विकल्प के तौर पर प्रस्तुत करती है। भीतर से सुधार का मतलब है समुदाय के भीतर से ही निजी क़ानूनों में सुधार का प्रयास। इससे उदारतावादियों या हिंदू उग्र-राष्ट्रवाद में से किसी एक को चुनने की मजबूरी ख़त्म हो जाएगी तथा समुदाय के भीतर से आने वाले सुधार राज्य की तुलना में किये जाने वाले सुधारों से बेहतर हो जाएँगे। दरअसल, यह सुधार समुदाय स्वयं अपनी ज़िम्मेदारी पर करेगा और स्त्रियों के अधिकारों के संदर्भ में निजी क़ानूनों में सुधारों की बात करने पर बहिर्वेशन का ख़तरा कम होगा। इस तरीक़े से कुछ ऐसे मूलभूत सुधार किये जा सकते हैं जो स्त्रियों के जीवन से निकट रूप से जुड़े हुए हैं और जिनमें धर्म की मध्यस्थता है— जैसे विवाह, तलाक़, सम्पत्ति आदि।

उपरोक्त तीनों नज़रियों तथा शाहबानो मुक़दमे के इर्द-गिर्द उभरने वाली परिस्थितियों को समझने के पश्चात् स्पष्ट होता है कि ये तीनों दृष्टिकोण मुसलमान महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए भीतर से सुधार को एक महत्त्वपूर्ण विकल्प मानते हैं, जबकि इसलामी नारीवाद एक ऐसा विचार है जो मुख्य रूप से भीतर से सुधार पर ही आधारित है।

भीतर से सुधार की सम्भावनाएँ

भीतर से सुधार एक प्रारम्भिक बिंदु हो सकता है जिसके पश्चात् अंततः लैंगिक न्याय की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। भारत में भीतर से सुधार के कुछ महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

ऑल इण्डिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड के दारुल कज़ा के सामने आया एक मुक़दमा : यहाँ वर्णित मुक़दमा दिल्ली स्थित ऑल इण्डिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड[37] के दारुल कज़ा के सामने आया। यह मुक़दमा[38] बताता है कि वादी (स्त्री) का विवाह प्रतिवादी (पुरुष) से 1982 में हुआ। चार संतानें हुईं— दो पुत्र तथा दो पुत्रियाँ अक़बर, समीर, सहर, महक (बदले हुए नाम)।

आपसी संबंधों में लगातार तनाव और मनमुटाव के चलते वादी ने प्रतिवादी से अपना निकाह ख़त्म करने और बच्चों की परवरिश का क़ानूनी फ़ैसला करने के लिए दारुल कज़ा, दक्षिणी दिल्ली में मुक़दमा किया। सुनवाई के पश्चात् निर्णय लिया गया कि पुरुष और स्त्री का तलाक़ होगा तथा पुरुष स्त्री के सभी वाजिब हक़ अदा करेगा। वादी का मासिक इद्दत का ख़र्च 500 रुपये प्रति माह के अनुसार 1,500 रुपये, तीनों बच्चों की परवरिश का मासिक ख़र्च 1,500 रुपये, इसके साथ ही तीनों बच्चों की यूनिफ़ॉर्म और किताबों पर ख़र्च के लिए 3,000 रुपये वार्षिक निश्चित किये गये। यह भी तय किया गया कि दो वर्ष पश्चात् बच्चों की आवश्यकताओं के अनुसार इस रक़म में मुनासिब बढ़ोतरी

---

[37] ऑल इण्डिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड की स्थापना हैदराबाद में एक मीटिंग में 7 अप्रैल, 1973 को की गयी थी.

[38] अमरीन द्वारा मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी का इंटरव्यू, 2 अगस्त, 2012, *दारुल क़ज़ा,* ओखला.

स्वयं वादी तथा प्रतिवादी कर लेंगे। बच्चों की परवरिश का पूरा ख़र्च 1,750 रुपये मासिक का चेक प्रत्येक माह की पहली तारीख़ को दो साल तक और इद्दत ख़र्च की कुल रक़म 1,500 रुपये अप्रैल, 1996 की पहली तारीख़ को प्रतिवादी नक़द दे देगा और बिजली के सामान के लिए ली गयी रकम 8,000 रुपये का चेक वादी को अगस्त 1996 की पहली तारीख़ को दे देगा। यह भी स्पष्ट किया गया कि वादी मेहर की रकम 51,000 रुपये, शादी के समय वादी की ओर से प्रतिवादी को दी गयी नक़द रक़म 50,000 रुपये और क़र्ज़ 35,000 रुपये अर्थात् कुल रक़म 1,36,000 रुपये के बदले एक दुकान लेने को तैयार है। यह भी साफ़ किया गया कि प्रतिवादी शादी में अपनी ओर से वादी को मिले हुए सोने के गहनों, जिनका वज़न 10 तोले है तथा चाँदी के गहनों का वज़न छह तोले है, वादी को देगा। शरीयत के अनुसार तीनों बच्चे समीर, सहर, महक बालिग होने तक अपनी माँ के साथ रहेंगे और इनके ख़र्च की ज़िम्मेदारी पिता की होगी तथा बड़ा पुत्र अक़बर अपने पिता के साथ रहेगा। इस मुक़दमे का निर्णय 26 अप्रैल, 1996 को हुआ।

यह मुक़दमा महिला द्वारा तलाक़ के लिए दायर किया गया जिसे सामान्यत: खुला के नाम से जाना जाता है यद्यपि यह अधिकार महिलाओं को सीमित रूप से मिलता है परंतु उपरोक्त मुक़दमे में महिला के हितों को कहीं भी नज़रअंदाज़ नहीं किया गया। उसके सभी वाजिब हक़ दिलवाने का निर्णय दिया गया जोकि निजी क़ानूनों के अंतर्गत महिलाओं के लिए सुधार की सम्भावनाओं के द्वार खोलता है। इस मुक़दमे की जानकारी मैंने ऑल इण्डिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड, ओखला के दारुल कज़ा से हासिल की, पर शोध के सीमित क्षेत्र और कुछ सीमाओं के चलते इस मुक़दमे का मैं आगे तक अध्ययन नहीं कर पायी। यहाँ इस मुक़दमे को लाना और इस पर विचार करने में मेरा उद्देश्य यह दिख़ाना नहीं है कि दारुल कज़ा सर्वश्रेष्ठ भूमिका निभा रहा है बल्कि यह कि स्वतंत्रता के बाद निजी क़ानूनों में सुधार पर हुई बहसों में ऑल इण्डिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड का रवैया हमेशा अनुदार रहा। दरअसल, मुसलमान समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाली यह संस्था परिवर्तन के पक्ष में नहीं है। इसके बावजूद अन्य मुक़दमे जो भारत के अन्य शहरों में स्थित दारुल कज़ा के समक्ष आते हैं और निपटाए जाते हैं, इन्हें एक तरह के अवसर के रूप में देखा जा सकता है। यह अवसर स्त्रियों को इसलामी क़ानून के संदर्भ में सशक्त करने में एक शुरुआती बिंदु हो सकता है।

मुसलिम महिला (तलाक़ पर अधिकार संरक्षण अधिनियम),1986[39] : मुसलिम महिला अधिनियम विवादित शहबानो मुक़दमे[40] के पश्चात् अस्तित्व में आया। इस अधिनियम के माध्यम से मुसलमान महिलाओं को फ़ौजदारी क़ानून की धारा 125–127 के सीमा क्षेत्र से बाहर कर दिया गया। यह धारा तलाक़ के पश्चात् महिलाओं के गुज़ारे भत्ते से संबंधित है। जिस पृष्ठभूमि में मुसलिम महिला अधिनियम पारित हुआ था वह समान नागरिक संहिता के विरुद्ध निजी क़ानूनों को संरक्षित करने तथा निजी क़ानूनों के माध्यम से अल्पसंख्यकों द्वारा अपनी अस्मिता और संस्कृति के संरक्षण का प्रयास था। पर यहाँ स्त्री संगठनों तथा मुसलमान समुदाय के एक भाग ने इस अधिनियम का विरोध किया क्योंकि इनके अनुसार यह अधिनियम मुसलमान स्त्रियों के समानता के अधिकार का उल्लंघन करता है तथा इस अधिनियम के लागू हो जाने पर मुसलमान स्त्रियों के अधिकार समुदाय के कठोर नियंत्रण के दायरे में आ जाएँगे जो मुसलमान महिलाओं के लिए अवसरों और उनकी सहभागिता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करेगा। इस प्रकार इस अधिनियम को विरोध झेलना पड़ा। परंतु अंतत: यह अधिनियम पारित हुआ। एक महत्त्वपूर्ण घटना जो समय के साथ-साथ घटित हुई और भीतर से

[39] मुसलिम वुमॅन (प्रोटेक्शन ऑफ़ राइट्स ऑन डाइवोर्स) ऐक्ट. पब्लिश्ड इन द *गज़ेट ऑफ़ इण्डिया*, एक्सट्राऑर्डिनरी, 19 मई 1986, नयी दिल्ली.

[40] राजेश्वरी सुंदर राजन और ज़किया पाठक, वही; मधु किश्वर, वही.

प्रतिमान समय समाज संस्कृति / 738

फ़रवरी, 2005 में महिला अदालत के साथ ऑल इण्डिया मुसलिम वुमॅन पर्सनल लॉ बोर्ड की स्थापना हुई। शाइस्ता अंबर से बातचीत में जो विचार सामने आये वे लगातार संघर्ष और नयी सम्भावनाएँ तलाशने की प्रेरणा देते हैं। इस संगठन का मानना है कि लड़कियों को क़ुरान की पूरी जानकारी होनी चाहिए। इसके लिए ज़रूरी है कि वह क़ुरान को तर्जुमे के साथ पढ़ें ताकि वह अपनी स्थिति को लेकर किसी तरह कि दुविधा में न रहें। इसका मानना है कि सुधार के लिए पक्के इरादे की ज़रूरत है।

सुधार का एक महत्त्वपूर्ण संकेत भी देती है, वह है मुसलिम महिला अधिनियम की स्त्रियों के पक्ष में मजिस्ट्रेटों और उच्च न्यायालयों द्वारा की गयी सकारात्मक व्याख्याएँ।

मुसलिम महिला अधिनियम के कुछ ऐसे प्रावधानों का ज़िक्र करना यहाँ आवश्यक है जो हमें अधिनियम की सकारात्मक व्याख्याओं की ओर ले जाते हैं। सर्वप्रथम, मुसलिम महिला अधिनियम का शीर्षक यह स्पष्ट करता है कि यह अधिनियम तलाक़ के संबंध में महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा के लिए है, न कि उनके अधिकारों को सीमित करने के लिए। इस प्रकार यह एक महत्त्वपूर्ण आधार तथा तर्क प्रदान करता है कि स्त्रियों के अधिकारों की सुरक्षा ध्यान में रखते हुए तलाक़ के मुक़दमों में निर्णय दिया जाना चाहिए। अधिनियम के शीर्षक के अतिरिक्त भाग 3 (1)(ए) कहता है कि तलाक़शुदा मुसलमान महिला के लिए उचित एवं न्यायसंगत प्रावधान किया चाहिए। मुसलिम महिला अधिनियम का यह भाग अत्यंत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कई मुक़दमों में इस भाग को आधार बना कर महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक व्याख्याएँ दी गयी हैं। यह प्रावधान इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि इसका आधार क़ुरान की सूरह बकर की आयत 241 (2:241) है। यह ध्यान देने योग्य है कि बांग्लादेश में तलाक़ के मुक़दमे में इसी आयत को आधार बना कर इज्तिहाद का इस्तेमाल किया गया है। इस प्रकार यह प्रावधान इसलामी विमर्श में अपनी वैधता के कारण अधिनियम की सकारात्मक व्याख्याओं में अत्यंत महत्त्वपूर्ण बन गया।

मुसलिम महिला अधिनियम, 1986 के अंतर्गत आने वाले कुछ शुरुआती मुक़दमें तलाक़शुदा मुसलमान महिलाओं के पक्ष में नज़र आते हैं। जनवरी, 1988 में लखनऊ न्यायालय की एक महिला दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) रेखा दीक्षित ने शफ़त अहमद को यह आदेश दिया कि वह अपनी तलाक़शुदा पत्नी फ़हमीदा सरदार को 30,000 रुपये उचित और न्यायसंगत प्रावधान के तौर पर दे तथा 3,000 रुपये इद्दत का ख़र्च और 52,000 रुपये मेहर भी दे। इस मुक़दमे के आठ दिन पश्चात् ही रेखा दीक्षित ने मोहम्मद ख़ालिद अहमद को उसकी तलाक़शुदा पत्नी शाहिदा ख़ातून को 11,000 रुपये महर, 1500 रुपये इद्दत का ख़र्च और 69,000 रुपये उचित एव न्यायसंगत प्रावधान के रूप में देने का आदेश

दिया।[41] उपरोक्त मुक़दमों के अतिरिक्त कई अन्य मुक़दमों में भी महिलाओं के पक्ष में उचित एवं न्यायसंगत प्रावधान को आधार बना कर निर्णय दिये गये। ये हैं : अरब अहमदिया अब्दुल्लाह बनाम अरब बैल मोहमुना सैयदभाई और अन्य, 18 फ़रवरी, 1988[42], के. जुनैदीन बनाम अमीना बेगम, 1997[43] तथा के.मोहम्मद बशीर बनाम आयशा, 6 जून, 2011[44]। इस मुक़दमे में न्यायाधीश ने स्त्री-पक्ष को उसके भविष्य की ज़रूरतों के हिसाब से गुज़ारा भत्ता देने का आदेश देते हुए कहा कि भत्ता केवल इद्दत की अवधि तक ही सीमित नहीं है। इस मुक़दमे में यह भी कहा गया कि मुसलिम महिला अधिनियम तलाक़ के संबंध में स्त्रियों के अधिकारों को छीनता नहीं है।

उपरोक्त मुक़दमे भीतर से सुधार के महत्त्वपूर्ण उदाहरण के रूप में उपलब्ध हैं जो सुधार के संकेत देते हैं। चूँकि मुसलिम महिला अधिनियम के अंतर्गत आने वाले सभी मुक़दमों की स्थिति ऐसी नहीं है[45] इसलिए यह आवश्यक है कि महिलाओं के पक्ष में की जाने वाली सकारात्मक व्याख्याओं को प्रोत्साहित किया जाए।

ऑल इण्डिया मुसलिम वुमॅन पर्सनल लॉ बोर्ड : इस संगठन की स्थापना कुछ प्रमुख महिलाओं के एक छोटे से समूह ने की जो लखनऊ में एक विवाह के दौरान मिली थीं। इनका मुख्य उद्देश्य महिलाओं के हितों और उनकी समस्याओं को समझ कर उनके लिए कार्य करना है। लगभग पैंतीस महिलाएँ, जो इसलाम के विभिन्न संप्रदायों से संबंध रखती हैं, तथा कुछ हिंदू महिलाओं ने जमा हो कर फ़रवरी, 2005 में महिला अदालत के साथ इस संगठन को स्थापित किया जिसमें एकपक्षीय तलाक़ तथा दहेज संबंधी क्रूरताओं को लेकर 166 मामले दर्ज किये गये।[46] वुमॅन पर्सनल लॉ बोर्ड ने ने सवाल उठाया कि ऑल इण्डिया मुसलिम पर्सनल लॉ बोर्ड में स्त्रियों की नुमाइंदगी केवल 12 फ़ीसदी ही है, और ये स्त्रियाँ भी ज़्यादा प्रभावी नहीं हैं। स्त्रियों को बोर्ड में पहली बार 2001 में ही शामिल किया गया था। शाइस्ता अंबर से बातचीत[47] में जो विचार सामने आये उनसे लगातार संघर्ष करने और नयी सम्भावनाएँ तलाशने की प्रेरणा मिलती है। यहाँ प्रत्येक शुक्रवार को एक अदालत लगती है जिसमें तलाक़ आदि मामलों में लोगों की कौंसिलिंग की जाती है और उन्हें समझाने का प्रयास किया जाता है। इस संगठन का मानना है कि लड़कियों को क़ुरान की पूरी जानकारी होनी चाहिए । इसके लिए ज़रूरी है कि वह क़ुरान को तर्जुमे के साथ पढ़ें ताकि वह अपनी स्थिति को लेकर किसी तरह की दुविधा में न रहें। इसका मानना है कि सुधार के लिए पक्के इरादे की ज़रूरत है। इसके अतिरिक्त और भी कई संस्थाएँ हैं जो मुसलमान महिलाओं के हितों के लिए काम कर रही हैं। उदाहरण के लिए आवाज़-ए-निस्वाँ, जमात आदि।[48]

मुसलमान समुदाय के कुछ व्यक्तियों के विचार : मुसलमान समुदाय के कुछ व्यक्ति जैसे एम.एच. बेग, ए.जी. नूरानी, दानियल लतीफ़ी, असगर अली इंजीनियर आदि शरीयत के विशेषज्ञ थे।

---

[41] राजेश्वरी सुंदर राजन और ज़किया पाठक, वही.

[42] अरब अहमदिया अब्दुल्लाह बनाम अरब बैल मोहमुना सैयदभाई और अन्य, 18 फ़रवरी, 1988.
ऑनलाइन उपलब्ध : http://indiankanoon.org/doc/823221/; देखा गया 29 दिसम्बर, 2012.

[43] के. जुनैदीन बनाम अमीना बेगम, 1997.
ऑनलाइन उपलब्ध : http://indiankanoon.org/doc/1156241/; देखा गया 1 जनवरी, 2013.

[44] के. मोहम्मद बशीर बनाम आयशा, 6 जून, 2011; देखें, http://indiankanoon.org/doc/152422708; देखा गया 1 जनवरी, 2013.

[45] ज़ोया हसन (1994), *फ़ोरजिंग आइडेंटिटीज़ : जेंडर, कम्युनिटी ऐंड द स्टेट*, काली फ़ॉर वीमेन, नयी दिल्ली.

[46] सिल्विया वटुक, वही.

[47] अमरीन द्वारा शाइस्ता अंबर का इंटरव्यू, 13 फ़रवरी, 2013, लखनऊ.

[48] सिल्विया वटुक, वही.

शाहबानो मुक़दमे के विवाद में इन सभी ने मुसलमान महिलाओं के अधिकारों का पक्ष लिया। न्यायाधीश एम.एच. बेग (तत्कालीन अल्पसंख्यक आयोग के अध्यक्ष) ने कहा कि फ़ौजदारी क़ानून की धारा 125 के अंतर्गत मुसलमान महिला को गुज़ारे भत्ते का अधिकार देना मुसलिम निजी क़ानूनों में हस्तक्षेप नहीं है।[49] मुसलमान समुदाय का यह भाग उदारतावादी और प्रबुद्ध विचारों का पैरोकार है।

निष्कर्ष

तलाक़ के संबंध में सुधार के लिए इज्तिहाद की सम्भावनाएँ तलाशना ज़रूरी है। उप-महाद्वीप के बांग्लादेश तथा पाकिस्तान जैसे देशों में इसके अधिक प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जबकि भारत में इस तरह के प्रत्यक्ष उदाहरणों का अभाव है। पर भारत के उच्च न्यायालयों और दण्डाधिकारियों द्वारा मुसलिम महिला अधिनियम, 1986 की सकारात्मक व्याख्याएँ, मुसलमान समुदाय का एक प्रबुद्ध वर्ग तथा मुसलमान महिला कार्यकर्ताओं का संघर्ष भीतर से सुधार के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावी संकेत है। मुसलिम महिला अधिनियम अत्यंत महत्त्वपूर्ण बिंदु है। उसकी आलोचना करने के साथ-साथ उससे परे जा कर उसकी अंतर्निहित सम्भावनाओं पर चिंतन करने की भी आवश्यकता है। भले ही यह अधिनियम विवादित हो अथवा पूर्ण न हो, पर न्यायालयों द्वारा इस अधिनियम की सकारात्मक व्याख्याएँ सुधार की उम्मीद जगाती हैं। यह सुधार के एक अवसर के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है। यद्यपि इस लेख में इज्तिहाद की सम्भावनाओं को तलाक़ के संदर्भ में देखने का प्रयास किया गया है, पर प्रश्न केवल गुज़ारे भत्ते का नहीं है, बल्कि इस प्रक्रिया में गुज़ारे भत्ते से परे जाने का सवाल ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। असली मसला मुसलमान औरतों की स्थिति को सशक्त करने और उन्हें लैंगिक न्याय दिलाने की चर्चा करते हुए इज्तिहाद की भूमिका और सम्भावनाओं पर विचार करने का है।

संदर्भ

अर्चना पाराशर (1992), *वुमॅन ऐंड फ़ैमिली लॉ रिफ़ॉर्म इन इण्डिया,* सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली.

अनुराधा नीधम और राजेश्वरी सुंदर राजन (2007)(सम्पा.), *द क्राइसिस ऑफ़ सेकुलरिज़म इन इण्डिया,* परमानेंट ब्लेक, रानीखेत.

अब्दुल रहीम (1911), *मोहम्मडन जुरिसप्रुडेंस,* मद्रास.

अमरीन द्वारा मौलाना सैयद जलालुद्दीन उमरी का इंटरव्यू, 2 अगस्त, 2012, दारुल कज़ा, ओखला.

अमरीन द्वारा शाइस्ता अंबर का इंटरव्यू, 13 फ़रवरी, 2013, लखनऊ.

अमीना वदूद (2006), *इंसाइड द जेंडर जिहाद,* वनवर्ल्ड ऑक्सफ़र्ड, ऑक्सफ़र्ड. इक़बाल अंसारी (1991), 'मुसलिम वुमंस राइट्स : गोल्स ऐंड स्ट्रेटेजी फ़ॉर रिफ़ॉर्म', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 26, अंक 17.

अरब अहमदिया अब्दुल्लाह बनाम अरब बैल मोहमुना सैयदभाई और अन्य, 18 फरवरी, 1988.

अहमद हसन (1973), 'मॉडर्न ट्रेंड्स इन इज्मा', *इसलामी स्टडीज़,* खण्ड 12.

अहमद हसन (1983), 'मोड्स ऑफ़ रीजनिंग इन लीगल कॉज़', इसलामी स्टडीज़, खण्ड 22, अंक 1.

ऑनलाइन उपलब्ध : http://indiankanoon.org/doc/823221/; देखा गया 29 दिसम्बर, 2012.

ऑनलाइन उपलब्ध : http://indiankanoon.org/doc/1156241/; देखा गया 1 जनवरी, 2013.

---

[49] ज़ोया हसन (1989), 'माइनॉरिटी आइडेंटिटी, मुसलिम वुमॅन बिल कैम्पेन ऐंड द पॉलिटिकल प्रोसेस', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 24, अंक 1 : 44-50.

इम्तियाज़ अहमद (1995), 'पर्सनल लॉ : प्रोमोटिंग रिफ़ॉर्म फ्रॉम विदिन', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 30, अंक 45.के.जुनैदीन बनाम अमीना बेगम, 1997.

एच.ए.आर. गिब (1932), *विदर इसलाम,* वी.गोलानेज, लंदन.

एडवर्ड सेल (1986), *द फ़ेथ ऑफ़ इसलाम,* किसिंजर पब्लिकेशन, लंदन.

एल.ई. ब्राउन (1939), *द डिवेलपमेंट ऑफ़ इसलाम,* मुसलिम वर्ल्ड.

एस.इरफ़ान हबीब (2012), *जिहाद ऑर इज्तिहाद,* हार्पर कॉलिंस, नयी दिल्ली.

ऐन रेचल कोड (1996), 'अ क्रिटिकल एनालिसिस ऑफ़ द रोल इज्तिहाद इन लीगल रिफ़ॉर्म इन मुसलिम वर्ल्ड', *अरब लॉ क्वार्टरली,* खण्ड 14, अंक 2.

के.मोहम्मद बशीर बनाम आयशा, 6 जून, 2011; ऑनलाइन उपलब्ध : http://indiankanoon.org/doc/152422708; देखा गया 1 जनवरी, 2013.

कैरोन विन्त्जेज (2010), 'सिमोन द बोउवार : समकालीन नारीवादी विचारक', अनिल कुमार वर्मा (सम्पा.), *शोधार्थी,* 30 जनवरी, सीएसडीएस, नयी दिल्ली.

ज़किया पाठक और राजेश्वरी सुंदर राजन (1989), 'शाहबानो', *साइन्स,* खण्ड 14, अंक 3.

जानकी नायर (1996), *वुमॅन ऐंड लॉ इन कोलोनियल इण्डिया,* काली फ़ॉर वुमॅन, नयी दिल्ली.

ज़िबा मीर होसैनी (2001), 'द कंस्ट्रक्शन ऑफ़ जेंडर इन इसलामी लीगल थॉट ऐंड स्ट्रेट्जीज़ फ़ॉर रिफ़ॉर्म', *ब्रिल,* खण्ड 1, अंक 1.

जी.जे. लारसन (2001) (सम्पा.), *रिलीजन एण्ड पर्सनल लॉ इन सेकुलर इण्डिया,* इण्डियाना युनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो.

ज़ोया हसन और रितु मेनन (2005) (सम्पा.), *इन अ माइनॉरिटी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

ज़ोया हसन (1994) (सम्पा.), *फ़ोरजिंग आइडेंटिटीज़ : जेंडर, कम्युनिटी एण्ड द स्टेट,* काली फ़ॉर वीमेन, नयी दिल्ली.

ज़ोया हसन (1989), 'माइनॉरिटी आइडेंटिटी, मुसलिम वीमेन बिल कैम्पेन एण्ड पॉलिटिकल प्रोसेस', *इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 24, अंक 1.

डब्ल्यू. बी. हैलेक़ (1984), 'वाज़ द गेट ऑफ़ इज्तिहाद क्लोज़्ड', *इंटरनैशनल जर्नल ऑफ़ मिडिल ईस्ट स्टडीज़,* खण्ड 16, अंक 1.

डब्ल्यू.बी. हैलेक़ (2009), *एन इंट्रोडक्शन टु इसलामी लॉ,* केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

नादिया क्रिस्टीना श्नाइडर (2009), 'इसलामी फ़ेमिनिज़म ऐंड मुसलिम वुमंस राइट्स एक्टिविज़म इन इण्डिया', *जर्नल ऑफ़ इंटरनैशनल वुमंस स्टडीज़,* खण्ड 11, अंक 1.

नाथन विदर (2010), 'फ़ूको : शक्ति की अवधारणा', अनिल कुमार वर्मा (सम्पा.), *शोधार्थी,* 30 जनवरी, सीएसडीएस, नयी दिल्ली.

निवेदिता मेनन (1999)(सम्पा.), *जेंडर ऐंड पॉलिटिक्स इन इण्डिया,* ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

पी.बी. क्लार्क (2009)(सम्पा.), *द ऑक्सफ़र्ड हेंडबुक ऑफ़ सोसियोलॅजी ऑफ़ रिलीजन,* ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.

फ़्लेविया एग्नेस (2001), *लॉ एण्ड जेंडर इनईक्वलिटी,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

फ़्लेविया एग्नेस (1999), 'लॉ ऐंड वीमेन ऑफ़ एज', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 34, अंक 44.

फ़्लेविया एग्नेस (2001), 'माइनॉरिटी आइडेंटिटी ऐंड जेंडर कंसर्न्स', *इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 36, अंक 42.

फ़्लेविया एग्नेस (1992), 'मेंटेनेंस फ़ॉर वीमेन : रिहटोरिक फ़ॉर ईक्वलिटी', *इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 27, अंक 41.

फ़्लेविया एग्नेस (1994), 'वीमेंस मूवमेंट विदिन ए सेकुलर फ्रेमवर्क : रिडिज़ाइनिंग द एजेंडा', *इकनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* खण्ड 29, अंक 9.

बर्नार्ड वीज़ (1977), 'इंटरप्रेटेशन इन इस्लामिक लॉ : द थियरी ऑफ़ इज्तिहाद', द *अमेरिकन जर्नल ऑफ़ कम्पेरेटिव लॉ,* खण्ड 26, अंक 2.

मनीषा प्रियम, मधूलिका बनर्जी और कृष्णा मेनन (2009), *ह्यूमन राइट्स, जेंडर ऐंड एनवायरनमेंट,* पियर्सन इण्डिया, नयी दिल्ली.

मैत्रेयी मुखोपाध्याय और नवशरण सिंह (2007)(सम्पा.), *जेंडर जस्टिस, सिटीज़नशिप ऐंड डिवलपमेंट,* जुबान, नयी दिल्ली.

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान (2001), *कंसर्निंग डाइवोर्स,* गुड्वर्ड बुक्स, नयी दिल्ली.

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान (2008), *मसाइल-ए-इज्तिहाद,* गुड्वर्ड बुक्स, नयी दिल्ली.

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान (2006)(अनुवाद), *क़ुरान,* गुड्वर्ड बुक्स, नयी दिल्ली.

रुथ रोडेड (1999), *वुमॅन इन इसलाम ऐंड मिडिल ईस्ट,* आइ.बी. तौरीस, लंदन, न्यूयॉर्क.

रणजीत कुमार (2010), 'संकट में है तुर्की की धर्मनिरपेक्ष विरासत', *नवभारत टाइम्स,* दिल्ली, 16 सितंबर.

राजकिशोर (2004)(सम्पा.), *भारतीय मुसलमान : मिथक और यथार्थ,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

शाइस्ता पी. अली करमाली और फ़ियोना डन (1994), 'द इज्तिहाद कंट्रोवर्सी',*अरब लॉ क्वार्टरली,* खण्ड 9, अंक 3.

शाहिद अमीन और दीपेश चक्रबर्ती (1996) (सम्पा.), *सबाल्टर्न स्टडीज़ xi,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

शेरलीन नेगी हेस बाइबर (2007), *हेंडबुक ऑफ़ फ़ेमिनिस्ट रिसर्च,* सेज पब्लिकेशन.

सबा महमूद (2004), *पॉलिटिक्स ऑफ़ पाइटी,* प्रिंस्टन यूनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंस्टन.

सबा महमूद (2006), 'सेकुलरिज़म, हर्मेनुटिक्स ऐंड एम्पायर : द पॉलटिक्स ऑफ़ इसलामी रिफ़ॉर्मेशन', *पब्लिक कल्चर,* खण्ड 18, अंक 2.

साधना आर्य, निवेदिता मेनन और जिनी लोकनीता (2010) (सम्पा.), *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे,* हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली.

सैयद अमीर अली (2004), द *स्पिरिट ऑफ़ इसलाम,* ताज कम्पनी, दिल्ली.

सुज़ेन स्पेक्टरोस्की (2010), *वुमॅन इन क्लासिकल इसलामी लॉ,* ब्रिल.लीडेन, बोस्टन.

सिल्विया वटुक (2008), 'इस्लामिक फ़ेमिनिज़म इन इण्डिया : इंडियन मुसलिम वुमॅन एक्टिविस्ट्स ऐंड द रिफ़ॉर्म ऑफ़ मुसलिम पर्सनल लॉ', *मॉडर्न एशियन स्टडीज़,* खण्ड 42, अंक 2/3.

हामिद अलजार (2002), 'क़ुरान 21: 78-79 : ए कुरानिक बेसिस फ़ॉर इज्तिहाद', *जर्नल ऑफ़ क़ुरानिक स्टडीज़,* खण्ड 4, अंक 2.